RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 23   एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 8 सितम्बर, 2019
विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120
दयानन्दाब्द : 195   वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 23, 5 -8 सितम्बर 2019 तदनुसार 23 भाद्रपद, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

यह लोक देवों का प्रिय है

ले०–स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः।।

–अथर्व० ५।३०।१७

शब्दार्थ–अयम् = यह **अपराजितः** = अपराजित= न हारा हुआ **लोकः** = लोक **देवानाम्** = देवों का **प्रियतमः** = अत्यन्त प्यारा है। **यस्मै** = जिस **मृत्यवे** = मृत्यु के लिए **दिष्टः** = नियत किया हुआ, **पुरुष** = हे पुरुष! **इह** = इस संसार में **त्वम्** = तू **जज्ञिषे** = उत्पन्न हुआ है, **सः** = वह **च** = भी **त्वा+अनु** = तेरे अनुकूल हो, हम तुझे **ह्वयामसि** = कहते हैं **जरसः** = बुढ़ापे से **पुरा** = पूर्व **मा+मृथाः** = तू मत मर।

व्याख्या–यह मानवदेह, यदि कामक्रोधादि राक्षसों से पराजित न हो तो देवों=विद्वानों धर्मात्माओं को अत्यन्त प्यारा है, क्योंकि इस मानवदेह में ही आत्मा को भवसागर से पार उतारने के साधन मिलते हैं। अन्य किसी देह में यह सुविधा नहीं मिलती, किन्तु मनुष्य की सब कामनाएँ मृत्यु के कारण अधूरी रह जाती हैं। आत्मा इस संसार में आया तो है किन्तु '**मृत्यवे दिष्टः**'= मृत्यु के समर्पित होकर। जाने, मृत्यु कब झटका दे और इस शरीर से बाहर कर दे और फिर पश्चात्ताप करना पड़े! मृत्यु अनिवार्य है, वह अवश्य आएगी, उससे बचकर कोई नहीं जा सकता, किन्तु मरकर फिर जन्म होता है–'**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च**'= उत्पन्न की मृत्यु अवश्यम्भावी है और मरे का जन्म भी अवश्य होता है, अतः '**अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः**' [अ० ५।३०।७] = बुलाया जाकर, इस तत्त्व को समझकर तू पुनः उन्नति के मार्ग पर आ, अर्थात् जनन–मरण होते ही रहते हैं। तू ऐसी कमाई कर कि जिससे तेरा अगला जन्म उन्नततर, प्रशस्ततर हो।

इस संसार का प्रयोजन जीवन की उन्नति ही है–'**आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्**' [अथर्व० ५।३०।७] ऊपर को उठना, आगे बढ़ना प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य है, अतः लक्ष्य की ओर चलना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। वह तभी पूरा हो सकता है जब अगला जन्म क्या, अगला दिन, पहले की अपेक्षा उत्तम हो। यतः यह शरीर देवों तक का प्यारा है, अतः वेद कहता है, मनुष्य! तू इसमें बहुत दिन रह। इसे शीघ्र–शीघ्र न छोड़ देना–'**मा पुरा जरसो मृथाः**' = बुढ़ापे से पहले मत मरना। मृत्यु का हेतु रोग है और रोग का हेतु पाप और दुराचार है। यथा–'**अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च। यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि।।**'=[अथर्व० १२।२।२] पापभाव तथा दुराचार के विचार, बुरे कर्म और उनके अनुकरण से सारे रोग होते हैं, उसी से मृत्यु होती है। उन सबको हम शरीर से भगाते हैं।

पाप की भावना, दुराचार आदि शरीर–नाश के हेतु हैं। यदि पापवासना और दुर्विचारों पर विजय पा ली जाए, तो यह देह सचमुच अपराजित हो जाए, अतः सद्विचार, सद्व्यवहार, सदाहार और सदाचार से अपना आयुष्य बढ़ाना चाहिए और मनुष्य–जन्म को सफल करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो।।

–पू० १.१.४.२

भावार्थ–हे प्रभो! जैसे वेदों के पवित्र उपदेशों के संसार भर में फैलाने और धारण करने से सब मनुष्यों की इस लोक और परलोक में रक्षा होती और संसार में शान्ति फैल सकती है ऐसी राजादिकों के पुलिसादि प्रबन्धों से भी नहीं, इसीलिये, हे शान्तिपूर्वक और सुरक्षक परमात्मन्! आप अपने वेदों के सत्योपदेशों को संसार भर में फैलाओ और हमें भी बल और बुद्धि दो कि आपकी चार वेद रूपी आज्ञा को संसार में फैला दें जिससे सब नर नारी आपकी प्रेम भक्ति में मग्न हुए सदा सुखी हों।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः।

–पू० १.२.३.२

भावार्थ–हे ब्रह्माण्डपते! हम सबको तीन वस्तुओं की कामना करनी चाहिये–एक आप परब्रह्म की प्राप्ति, दूसरी वेदविद्या, तीसरी यज्ञ अथवा १. हम यज्ञमानों को मन से ईश्वर का चिन्तन, २. वाणी से वेद–मन्त्रों का उच्चारण, ३. कर्म से अग्नि में आहुति छोड़ना।

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम्।।

–पू० १.२.३.७

भावार्थ–हे प्रभो! आप यजमान, होता आदि रूप हैं। यद्यपि ज्ञानयज्ञ में भी जीवात्मा, यजमान और वाणी आदि होता, पोता, प्रचेता, आदि ऋग्विग् हैं, परन्तु आपकी कृपा के बिना कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिए कहा गया है कि आप ही यजमानादि सब–कुछ हैं।

प्राणी जगत् में सर्वोत्तम मनुष्य

ले.-आचार्य देवेन्द्र प्रसाद शास्त्री ''सावित्रेय'' आर्य समाज मंदिर स्वामी श्रद्धानंद पथ, रांची

सभी योनियों में मनुष्य योनि को श्रेष्ठ योनि स्वीकारा गया है। वेद, उपनिषद्, स्मृतिग्रन्थ, महाभारत, पुराणादि मानव देह की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। हर प्राणी को तीन प्रकार के शरीर प्रकृति द्वारा प्रदत्त हैं। हमें जो शरीर बाहर से दिखलाई देता हैं, उसे स्थूल शरीर कहते हैं। इसके अन्दर में दो शरीर और हैं, जिन्हें सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं। सभी प्राणियों का स्थूल शरीर पाँच भूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) से जन्म लेने वाले जीवात्मा और उसके होने वाले माता-पिता के कर्मानुसार बना हुआ है। श्रीरामचरितमानस में संत शिरोमणि तुलसीदास का कथन है:-

''क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्व रचित अधम शरीरा।।''

मनुष्यों के हाथों में ये निर्मित पाँचों अंगुलियाँ इन पाँच तत्वों की ही तो द्योतक हैं। अंगूठा अग्नि तत्व, तर्जनी वायु तत्व, मध्यमा आकाश तत्व, अनामिका जल तत्व और कनिष्ठा पृथ्वी तत्व के प्रतीक माने जाते हैं। यही शरीर सुख-दु:ख भोगने का साधन है। यही शरीर घटता, बढ़ता रहता है और एक दिन समाप्त हो जाता है। इस स्थूल शरीर में पाँच कोष हैं:-

1. अन्नमय कोष-यह कोष अन्न से संतुष्ट होता है। यह सारे कोषों का आधार है।

2. प्राणमय कोष-इससे पाँच प्राण (1. प्राण, 2. अपान, 3. समान, 4. व्यान और 5. उदान) और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। यह कोष क्रियाशक्ति का केन्द्र है।

3. मनोमय कोष-मन तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों से यह बना हुआ है। यही इच्छा शक्ति का केन्द्र है।

4. विज्ञानमय कोष-बुद्धि और अहंकार के मिलने से प्रकाश पैदा होता है। इसलिये इसे ज्ञान शक्ति का केन्द्र कहते हैं।

5. इन सबसे परे जहाँ आनन्द की मात्रा रहती है, वह आनन्दमय कोष है।

इस स्थूल शरीर में पाँच प्राण, पाँच महाप्राण और ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। आत्मा इन सबका संचालक है। हृदय, गुर्दा, फेफड़े आदि संस्थान हैं। शरीर में छोटी-बड़ी सब मिलाकर 42 करोड़ 42 लाख, 10 हजार नाड़ियाँ है। पैर से मस्तक तक 101 जोड़ हैं। प्रत्येक प्राणी का शरीर त्रिगुणात्मक है, क्योंकि शरीर प्रकृति से निर्मित है। त्रिगुणात्मक का अर्थ है कि प्रकृति में तीन गुण हैं। सत, रज और तम। इन तीनों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। स्थूल शरीर में सतोगुण की प्रधानता होने पर सुख स्वरूप हो जाता है, अंग हल्के हो जाते हैं। इन्द्रियों की प्रसन्नता प्राप्त होती है। बुद्धि में निर्मलता आकर प्रकाश वाली हो जाती है।

रजोगुण की प्रधानता शरीर में होने से यह दु:खस्वरूप हो जाता है। चित्त एकाग्र न होकर उत्तेजना और चंचलता बढ़ जाती है।

तमोगुण की प्रधानता होने पर शरीर मोह स्वरूप होकर भारी हो जाता है। इन्द्रियाँ आलसी और दीर्घसूत्री हो जाती है, शुभ कर्मों में निद्रा आने लगती हैं। इसीलिए तो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के बारे में गीता कहती है:-

''ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:। जघन्य गुण वृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसा:।।''

-गी० 14/18

हमारा सूक्ष्म शरीर जन्म-जन्मान्तरों का साथी है। यह शरीर तभी से है, जब से शरीर और आत्मा का सम्बन्ध होने लगा तथा तब तक रहेगा, जब तक कि जीव मोक्ष की प्राप्ति न कर ले। इसी शरीर से योगी लोग पूर्वजन्मों और पुनर्जन्म की बातों को जान लेते हैं। यह शरीर पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच प्राण, पाँच सूक्ष्मभूत, मन और बुद्धि से निर्मित है। यह शरीर बहुत ही सूक्ष्म है। इसी शरीर में जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों की वासनायें रेखांकित रहती हैं। इसी शरीर के सहारे स्वकर्मानुसार आत्मा को भिन्न-भिन्न योनियों में पहुँचाया जाता है। यह शरीर सूक्ष्माति सूक्ष्म होने के कारण द्रष्टव्य नहीं है। जिन अदृश्य जीवों को सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखा जाता है, उन्हें भी यह सूक्ष्म शरीर होता है। जब किसी की मृत्यु होती है, तो यही शरीर अंदर की सूक्ष्म शक्तियों और इन्द्रियों के सूक्ष्म भागों को एकत्र करके अपने साथ उसी प्रकार से ले जाता है, जैसे राज-विप्पल हो जाने पर जीवित प्राणी भाग खड़े होते हैं। हम इस जन्म में जो भी कार्य करते हैं, उन सारे कर्मों के अत्यन्त सूक्ष्म संस्कार इसी शरीर में जमा होते जाते हैं। कहने का मतलब यह है कि यह सूक्ष्म शरीर स्थूलधारियों के आत्मा का रिकार्ड-कीपर है। हमारे सम्पूर्ण संकल्प, विचार, कर्म, हाव-भाव आदि सूक्ष्म शरीर पर अंकित होते हैं।

स्थूल-शरीर को तो नष्ट भी किया जा सकता है, जिसे हम लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति आत्म-हत्या कर लिया, आदि-आदि। परन्तु सूक्ष्म शरीर को वैसा नहीं कर सकते। अभी तक संसार के किसी भी वैज्ञानिक ने वैसा आविष्कार नहीं किया है, जिसके द्वारा इस सूक्ष्म शरीर से प्राणी को छुटकारा दिला सके। अथर्ववेद काण्ड-5 सूक्त 1 मंत्र सं. 2 में उद्घोषित है:-

''आ यो धर्माणि प्रथम: ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।।

धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत।।'' अर्थात्

सूक्ष्म शरीर ही मानव आत्मा को कर्मानुसार लिये फिरता है। जो मनुष्य पूर्वजन्म में धर्माचरण करते हैं, वे उस कर्म के फल से अनेक उत्तम शरीरों को धारण करते रहते हैं। और अधर्मात्मा मनुष्य नीच कर्म के फल से नीच शरीर को प्राप्त करते रहते हैं। यह जो पूर्वजन्म में किये हुए पाप-पुण्य के कर्मों को भोग करने के स्वभाव से युक्त आत्मा है, वह पूर्व शरीर को छोड़ करके जब वायु के साथ रहता है, तब उसे उस स्थिति में वायवीय शरीर प्राप्त हो जाता है। पुन: ईश्वरीय आदेश और विधाता के विधानानुसार जल औषधि व प्राणादि में प्रवेश करना पड़ता है, तदन्तर पुरूष के माध्यम से मादा के गर्भाशय में स्थिर हो के वे पुनर्जन्म ले लेते हैं।

जो जीव अनुदित वाणी को यथावत् जान के बोलता है और धर्म में ही यथावत् स्थिर रहता है, वह मनुष्य योनि से उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता जाता है। जो मनुष्य प्राप्त तन से अधर्माचरण करते रहते हैं, वे अनेक नीच शरीर को धारण करके अनेक दु:खों को भोगने के लिए बाध्य होते रहते हैं। इसलिये इस सूक्ष्म शरीर को अत्यन्त पवित्र बनाने की जरूरत पड़ जाती है। इसे वासनारहित किये बिना प्राणी को दु:खों से छुटकारा नहीं मिल सकता है।

उपरोक्त संदर्भ की पुष्टि निरूक्तकार यास्क मुनि भी करते हैं। उनका कथन इस प्रकार है:-

''मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृत:। नाना योनि सहस्त्राणि मयोषितानि यानि वै।। आहारा: विविधाभुक्ता पीता नाना-विधा: स्तना:। मातरो विविधा दृष्टा: पितर: सुहृदस्तथा। आवाङ्सुख: पीयऽमानो जन्तुश्चैव समन्वित:।।''

संस्कृत के इन श्लोकों के भाव इस प्रकार हैं-''मैंने अनेक बार जन्म-मरण के चक्र से होकर नाना प्रकार की हजारों योनियों का सेवन किया। अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दूध पीया, अनेक माता-पिता और सुहृदों को देखा। गर्भ में अनेक प्रकार की पीड़ाओं से युक्त हो के जन्म धारण किये। इन महादु:खों से जीव तभी छूट पाता है, जब मनुष्य में ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति का उद्भव हो जाता है, तब वह उसकी (ईश्वर की) आज्ञाओं का पालन करते हुए अन्त में जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पा जाता है। जीव को जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाने की प्रक्रिया को 'मोक्ष' की संज्ञा दी गई। सनातन धर्म और विभिन्न-मत-मतान्तरों के वेत्ता तथा प्रणेता 'मोक्ष' को ही अनेक नामों से अभिहित करते हैं। भारतीय ऋषि-महर्षियों की प्राचीन परम्परा का अनुपालन, और उपरोक्त विचारों की पुष्टि करते हुए आद्य शंकराचार्य ने 'चर्पट पंजरी' की रचना की। उन्होंने 'चर्पट पंजरी' के 'गोविन्दाष्टकम्' में मनुष्य की प्रभुभक्ति करने पर बल दिया और क्षणभंगुर शरीर की निस्सारता को दर्शाते हुए कहा:-

''भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।

प्राप्ते संन्निहित मरणं, नहि नहि रक्षति 'डुकृञ्चकरणे'।।1।।

बालस्तावत्कीडासक्रस्तरूण-स्तावत्तरूणी रक्त:।

वृद्धस्तावच्चिन्तामग्न: पारे ब्रह्मणि को ऽपि न लग्न:।।2।।

भज गोविन्दं...

अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीन जाततुण्डम् वृद्धों याति गृहीत्वा दण्ड तदपि न मुञ्चया-शापिण्डम्।।3।। भज गोविन्दं...

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

इह संसारे खलु दुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे।।4।। भज गोविन्दं...

दिनमपि रजनी सायं प्रात: शिशिर वसन्तो पुनरायात:।

काल: क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायु:।।5।।

भज गोविन्दं...

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेश: काषायम्बर बहुकृत वेष:।

पश्यन्नपि नहि पश्यति मूढ़: उदरनिमितं बहुकृतवेष:।।6।। भज गोविन्दं...

(क्रमश:)

सम्पादकीय 5 सितम्बर अध्यापक दिवस पर विशेष.........

अध्यापक द्वारा शिष्य का मार्गदर्शन

5 सितम्बर को भारतीय संस्कृति के संवाहक, प्रख्यात शिक्षाविद्, महान् दार्शनिक, भारत के दूसरे राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन का जन्मदिवस प्रतिवर्ष शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस दिन देश के सर्वोत्तम शिक्षकों को भारत सरकार द्वारा सम्मानित किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में योगदान देने वाले शिक्षाविदों को इस दिन सम्मानित किया जाता है। परन्तु आज देश के शिक्षाविदों को देश की शिक्षा प्रणाली का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमारे देश की युवा पीढ़ी को किस दिशा में ले जा रही है? और क्या एक अध्यापक अपने छात्रों को सही मार्गदर्शन दे पा रहा है या नहीं?

आज वर्तमान में समाज को ऐसे आदर्श शिक्षकों की आवश्यकता है जो बच्चों का सर्वांगीण विकास कर सकें। आधुनिक विषयों की शिक्षा के साथ-साथ अपनी संस्कृति और सभ्यता के प्रति युवा पीढ़ी को जागरूक करना आदर्श शिक्षक का मुख्य कार्य है। राष्ट्र की भावी पीढ़ी को सुसंस्कृत करना, सद्‌गुणों से युक्त करना एक अच्छे शिक्षक का उत्तरदायित्व है। किसी भी राष्ट्र का आधार उस राष्ट्र का युवा वर्ग होता है। अगर युवा वर्ग को माता-पिता और गुरू के द्वारा सही मार्गदर्शन मिले तो वे राष्ट्र नई उँचाईयों को छू सकते हैं। एक भावी नागरिक का निर्माण करना आदर्श शिक्षक के हाथ में है। माता-पिता के बाद अगर किसी का स्थान है तो वह गुरू का है। शिक्षक दिवस मनाने का तात्पर्य है कि शिक्षक और शिष्य को अपने-अपने कर्त्तव्य का बोध हो। गुरू की शिष्य के प्रति कैसी भावना होनी चाहिए और शिष्य की गुरू के प्रति कैसी श्रद्धा होनी चाहिए, इन सबका बोध कराने के लिए शिक्षक दिवस मनाया जाता है। आज की शिक्षा पद्धति में नैतिक मूल्यों का समावेश न होने के कारण शिक्षक और शिष्य दोनों अपने लक्ष्य से विमुख हो गए हैं। शिक्षक का शिष्य के प्रति कोई लगाव नहीं है और शिष्य के मन में भी गुरू के प्रति कोई आदर सत्कार की भावना नहीं है। ऐसी मूल्यविहीन शिक्षा पद्धति से देश का नुक्सान हो रहा है। जिस विद्यार्थी को अपनी समस्त ऊर्जा को अपनी विद्याप्राप्ति और सकारात्मक कार्यों में लगाना चाहिए वही विद्यार्थी अपनी ऊर्जा को हड़ताल करना, आन्दोलन आदि कार्यों में व्यर्थ गंवा रहा है। शिक्षकों की शिष्य के प्रति अवहेलना का भाव इसके लिए उत्तरदायी है। वर्तमान के तथाकथित उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षा के नाम पर यही सब हो रहा है। आज शिक्षण संस्थानों में पढ़ाई के नाम पर कुछ और ही हो रहा है। ऐसे में चिन्तन करने की आवश्यकता है कि हमारी शिक्षण प्रणाली किस दिशा में जा रही है और शिक्षक दिवस मनाने का क्या औचित्य रह गया है?

भारतीय संस्कृति में गुरू और शिष्य का रिश्ता बहुत गहरा है। इसीलिए शिक्षा देने वाले को वैदिक विचारधारा में आचार्य और गुरू कहा गया है और विद्यार्थी या शिष्य को ब्रह्मचारी। आचार्य का अर्थ है- आचारं ग्राहयति इति आचार्य:। इतना ही नहीं कि ब्रह्मचारी को सदाचार की शिक्षा दे, अपितु शिष्य के जीवन में सदाचार को ढाल दे, उसे ऐसी परिस्थिति में रखे कि शिष्य सदाचार को अपने आप ग्रहण करे। वेदों में ब्रह्मचारी और आचार्य शिक्षा के दो बिन्दु हैं और इन दोनों को मिलाने वाली रेखा सदाचार है। अगर आचार नहीं तो आचार्य आचार्य नहीं, शिक्षा शिक्षा नहीं। आज की प्रचलित शिक्षा पद्धति से हम इस प्रकार की उम्मीद नहीं कर सकते कि वे बच्चों का सम्पूर्ण विकास कर दें। आज की शिक्षा तो केवल बड़ी-बड़ी फीसें लेकर बच्चों को परीक्षा पास करने का ठेका लेती हैं। चरित्र निर्माण का उसमें कोई स्थान नहीं है। बच्चा क्या कर रहा है, उसका रहन-सहन, व्यवहार, खान-पान, संगति कैसी है। इन सबसे आज की शिक्षा का कोई मतलब नहीं रह गया है। पहले शिक्षा में चरित्र को महत्ता दी जाती थी परन्तु आज चरित्र को शिक्षा का अंग ही नहीं समझा जाता। प्राचीन शिक्षा पद्धति में बालक के सम्पूर्ण जीवन का विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होता था जैसे आज्ञाकारी बनना, माता पिता की सेवा करना, सत्य बोलना, धर्म का पालन करना आदि शिक्षा भी दी जाती थी। आज की शिक्षा पद्धति में अध्यापक और शिष्य के बीच में इतनी दूरी है कि अध्यापक को अपने विषय से मतलब है और विद्यार्थी इन सभी बातों से अनजान है। आज न तो पहले जैसे शिक्षक रहे जो अपने छात्रों को सही संस्कार दे सके और न ही वे छात्र रहे हैं जो शिक्षक को माता-पिता से भी ऊंचा दर्जा देते हुए देव तुल्य मानें।

शिक्षक दिवस का यह अर्थ नहीं कि साल में एक बार शिक्षक दिवस मनाया बच्चों के द्वारा गुरू की महिमा के ऊपर भाषण दे दिए गए या फिर बच्चों के द्वारा अपने अध्यापकों को कुछ गिफ्ट दे दिए जाए। बल्कि गुरू और शिष्य के बीच साल भर सामंजस्य बना रहे। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह केवल अपने विषय तक ही सीमित न रहकर अपने विद्यार्थियों की प्रत्येक गतिविधियों पर नजर रखें। बच्चे का व्यवहार कैसा है, उसकी संगति कैसी है, वह सच बोलता है या झूठ, उसके अन्दर कौन- कौन से गुण हैं और कौन से अवगुण हैं? अध्यापक को माली की तरह भूमिका निभाकर बच्चों के जीवन को निखारने का प्रयास करना चाहिए। गुरू देवो भव: के आदर्श को मानने वाले देश में शिक्षकों के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए किसी एक दिन की जरूरत नहीं , बल्कि उनका आदर तो हमेशा करना चाहिए। आज फिर विरजानन्द जैसे गुरू और दयानन्द जैसे शिष्य की आवश्यकता है। जिस गुरू ने अपने लिए कुछ नहीं मांगा अपितु राष्ट्र का सुधार करने की प्रतिज्ञा को दक्षिणा के रूप में मांगा और जिस शिष्य ने नतमस्तक होकर गुरू की आज्ञा को स्वीकार किया। ऐसे गुरू और शिष्य ही मिलकर राष्ट्र का भविष्य उज्जवल कर सकते है।

एक गुरू ही विद्यार्थी के जीवन में प्रकाश कर सकता है। गुरू सूर्य के समान है जिसके ज्ञान रूपी प्रकाश से राष्ट्र चमक उठता है। आज भी ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता है जो राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे सके। अपने विषय से हटकर विद्यार्थियों के जीवन निर्माण में भी रूचि लें, उसके अन्दर सद्‌गुणों का विकास करें। आज वर्तमान में फिर ऐसे गुरू और शिष्यों की आवश्यकता है जो राष्ट्र को एक नई दिशा दे सकें। शिक्षक दिवस के अवसर पर विद्यार्थियों का कर्त्तव्य बनता है कि वे अपने अध्यापकों का एक दिन के लिए नहीं अपितु जीवन भर सम्मान करें क्योंकि गुरू के द्वारा ही उसने जीवन में सफलता को प्राप्त किया है। इसलिए विद्यार्थियों का कर्त्तव्य है कि वे कभी भी अपने गुरूजनों की अवहेलना न करें, उनके सम्मान को ठेस न पहुँचाए। गुरू ऐसे दीपक के समान है जो स्वयं जलकर दूसरों के जीवन को प्रकाशित करता है। शिक्षक दिवस गुरूओं के प्रति आभार व्यक्त करने का दिवस है। ऐसे अवसर पर सभी गुरू और शिष्य अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने की शपथ लें। तभी शिक्षक दिवस मनाना सार्थक हो सकता है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

वैदिक संस्कृति की विशेषता

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

गतांक से आगे

यज्ञों में किसी भी प्रकार की हिंसा वर्जित है।

अब हम ब्रह्म यज्ञ के विषय में संक्षेप में विचार करते हैं। ब्रह्म यज्ञ का अर्थ है सन्ध्या वन्दन एवं योग साधना। योग के आठ अंग होते हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि।

पतंजली योग-

योग दर्शन में इन पर गम्भीर विवेचन हुआ है। योगश्चित्तवृति निरोध। पा.यो. 1.2 अर्थात् चित् की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाकर शुभ गुण में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में प्राप्त करने को योग कहते हैं।

यम-तत्राहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यपरिग्रहा यमाः। पा.यो. 2.30

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांच यम हैं।

1. अहिंसा-सब प्रकार से सब काल में सब प्राणियों के साथ वैरभाव छोड़कर प्रेम प्रीति से वर्तना अर्थात् किसी भी काल में किसी भी प्रकार से किसी प्राणी के साथ शत्रुता का काम न करना और किसी का अनिष्ट चिन्तन भी कभी न करना अहिंसा कहलाती है। अहिंसा शेष चार यमों का मूल है। क्योंकि अहिंसा के सिद्ध करने के लिये ही सत्यादि सिद्ध किये जाते हैं। हिंसा सब अनर्थों का हेतु है। हिंसा के अभाव को अहिंसा कहते हैं।

2. सत्य-जैसा अपने ज्ञान में हो वैसे ही सत्य बोले, करे, और माने। जिससे कि मन और वाणी यथार्थ नियम से रहे।

3. अस्तेय-पदार्थ वाले की आज्ञा के बिना किसी पदार्थ की इच्छा भी न करना। इसको चोरी त्याग भी कहते हैं।

4. ब्रह्मचर्य-उपस्थेन्द्रिय का संयम नाम निरोध करके वीर्य की रक्षा करना और सर्वथा जितेन्द्रिय रहना। त्रतुगामी होना और विद्या को पढ़ते पढ़ाते रहना।

5. अपरिग्रह-विषय और अभिमानादि दोषों से रहित होना। अर्थात् योग साधना की सामग्रीरूप भोग्य पदार्थों तथा विषयों का संग्रह करना, फिर उनकी रक्षा करना, पश्चात् उनके नाश से सर्वत्र हिंसारूप दोष देखकर जो विषयों वा अभिमान आदि दोषों को त्यागना अर्थात् विषयों को जो दृष्टि दोष से त्यागना है उसे अपरिग्रह कहते हैं।

डा. सत्यव्रत के अनुसार अपरिग्रह शब्द परिग्रह का उल्टा है। परिग्रह का अर्थ है चारों तरफ से पकड़ लेना, घेर लेना, समेट लेना हमारा जीवन परिग्रह का है। हम हर वस्तु को चाहे हमारे काम की हो या न हो पकड़े बैठे हैं। इस का उल्टा व्यवहार अपरिग्रह है।

नियम-शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। यो.पा. 2.32

अर्थ-(1) शौच (2) सन्तोष (3) तप (4) स्वाध्याय (5) ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम कहलाते हैं।

1. शौच पवित्रता को कहते हैं जो दो प्रकार का होता है। एक बाह्य शौच और दूसरा-आभ्यान्तर शौच।

इस विषय में मनु. स्मृति में पवित्रता प्राप्त करने के विषय में कहा है-अद्भि र्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति। विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धि ज्ञानेन शुध्यति।

2. सन्तोष-सदा धर्मानुष्ठान से अत्यन्त पुरूषार्थ करके प्रसन्न रहना और दुःख में शोकातुर न होना सन्तोष कहाता है।

अर्थात् निज पुरूषार्थ और परिश्रम करने से जो कुछ थोड़ा बहुत पदार्थ कुटुम्बपालनादि निमित्त प्राप्त हो उस ही में सन्तुष्ट रहना। निर्वाह योग्य पदार्थो के प्राप्त हो जाने पर अधिक तृष्णा न करना और अप्राप्ति में शोक भी न करना।

3. तप-धर्माचरण करने पर मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को सहज स्वीकार करना तप कहलाता है।

4. स्वाध्याय-वेदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ना पढ़ाना अपनी आत्मा को जानने में प्रयत्नशील रहना स्वाध्याय है।

5. ईश्वर प्रणिधान-ईश्वर में सब कर्मों का अर्पण कर देना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

3. आसन-तत्रस्थिरसुखमासनम्। यो.पा. 2.46।

अर्थात् जिसमें सुख पूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उसे आसन कहते हैं।

4. प्राणायाम-आसन स्थिर होने के पश्चात् श्वास और प्रश्वास दोनों की गति के अवरोध को प्राणायाम कहते हैं।

5. प्रत्याहार-स्वविषया सम्प्रयोगो चित्तस्य स्वरूपानुसार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार। यो.पा.2.54

अपने विषय का असम्प्रयोग न करके चित्त के स्वरूप के समान जो इन्द्रियों का भाव है उस ध्यानावस्थित शान्त वा निरूद्धा-वस्था को प्रत्याहार कहते हैं।

अर्थात् जिसमें चित्त इन्द्रियों के सहित अपने विषय को त्याग कर केवल ध्यानावस्थित हो जावे उसे प्रत्याहार कहते हैं।

6. धारणा-देश बन्धश्चित्तस्य धारणा। यो.पा.3.1

चित्त के नाभि आदि स्थानों में स्थिर करने को धारणा कहते हैं।

7. ध्यान-तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। यो.पा.3.2

उन नाभि आदि देशों में जहां धारणा की जाती है वहां ध्येय के अवलम्बन के ज्ञान में चित्त का लय हो जाना।

अर्थात् ध्येय के ज्ञान से अतिरिक्त अन्य पदार्थों के ज्ञान का अभाव हो जाने को ध्यान कहते है।

8. समाधि-तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः।

अर्थात् जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्निरूप हो जाता है इसी प्रकार परमात्मा के ज्ञान में प्रकाशमय होकर अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जानकर आत्मा को परमेश्वर के आनन्द और ज्ञान में परिपूर्ण कर लेना समाधि है।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

पृष्ठ 8 का शेष-स्वामी गंगागिरी जनता गर्ल्ज कालेज रायकोट...

सम्मानित किया गया। इस अवसर पर कालेज प्रबन्धक कमेटी के प्रधान श्री रमेश कौड़ा जी ने छात्राओं को सम्बोधित करते हुये कहा कि छात्राओं को अपने उज्जवल भविष्य के लिये देश से बाहर जाने की जरूरत नहीं है वह यहीं रह कर श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करके अपने कालेज तथा माता पिता का नाम रोशन कर सकती हैं तथा सफलता की बुलन्दियों को छू सकती हैं। अंत में प्रिंसीपल जी ने विशेष मेहमानों एवं आए हुये गणमान्य सज्जनों का धन्यवाद किया।

राजेन्द्र कौड़ा जनरल सैक्रेटरी

यज्ञ में ऋत्विज एवं दक्षिणादि

ले.-महात्मा चैतन्यस्वामी, महर्षि दयानन्द धाम-सुन्दर नगर

(गतांक से आगे)

यज्ञ के सम्पादन में किसी प्रकार की भी न्यूनता नहीं रहनी चाहिए। दक्षिणा भी यज्ञ का एक अति महत्वपूर्ण अंग है। बिना दक्षिणा के भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता है। वेद में कहा गया है-'जैसे बहुत पदार्थों को देने वाला यजमान ऋतु-ऋतु में यज्ञादि कराने वाले पुरोहित के लिए बहुत धन देकर उसको सुशोभित करता है... (ऋ०1-169-4)' लेकिन व्यक्ति दक्षिणा का सुपात्र होना चाहिए। यजुर्वेद (7-46) में पात्र को ही दान देने की बात कही गई है और साथ ही मानों ऋत्विजों की योग्यता भी बता दी गई हो। गृहस्थ प्रार्थना करता है कि मुझे ऐसा पात्र मिले जो वेदाभ्यास से ब्रह्म को जानने वाला ज्ञानी हो, जिसको अपने माता-पिता से सात्विक गुण प्राप्त हुए हों, जिसके पितामह भी जितेन्द्रिय और विद्वान् हों, जो तत्वद्रष्टा हो, ऋषियों में भी जो व्याख्यानशक्ति के कारण प्रसिद्ध हो, जो अपने कार्यों में दक्ष हो... स्वर्ण आदि उत्तम पदार्थों और धातुओं की दक्षिणा उसे प्रदान की जावे। इसी मन्त्र का व्याख्यान करते हुए शतपथ ब्राह्मण में ऋत्विजों को दक्षिणा देकर तृप्त करने का विधान किया गया है। महर्षि जी कहते है (सं०वि०)-'गृहस्थ स्त्रीपुरूष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान व त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी, जो सदा विद्या की वृद्धि और सबके कल्याणार्थ वर्तने वाले हों, उनको नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें... दक्षिणा के सम्बन्ध में महाभारत (शा०पा०) में कहा गया है-'दक्षिणा यज्ञों का अंग है। वही वेदोक्त यज्ञों का विस्तार एवं उनकी न्यूनता की पूर्ति करने वाली है। दक्षिणाहीन यज्ञ किसी प्रकार भी यजमान का उद्धार नहीं कर सकते।' यज्ञ में दो प्रकार से देवों की तृप्ति होती है। एक तो यज्ञ देव हवि आदि से तृप्त होते हैं दूसरे मनुष्य देव अर्थात् विद्वान् दक्षिणा से तृप्त होते हैं। बिना दक्षिणा के यज्ञ पूर्ण और सफल नहीं होता है।

दक्षिणा के सम्बन्ध में ब्राह्मणकार कहते हैं-जो यह यज्ञ के अन्त में दक्षिणा दी जाती है वह उस यज्ञ की रक्षकरूप में होती है, इसलिए उसे दक्षिणा कहते हैं। दक्षिणा ही यज्ञों को कराने की प्रेरणा विद्वानों को देती है, और यजमान को उनका शुभाशीर्वाद और वेदोपदेश मिलता है। इसलिए यह प्रथम मन में संकल्प के कारण होती है, अर्थात् दक्षिणा आगे ले जाने हारी है। यज्ञ में दक्षिणा शुभ और आपस में एक-दूसरे को जोड़ने हारी भी है। बिना दक्षिणा के यज्ञ सफल नहीं होता ऐसा विद्वानों का कथन है। हां, पर यह अवश्य है कि चाहे वह थोड़ी हो या अधिक अपनी शक्ति के अनुसार देनी अवश्य चाहिए, न देना अच्छा नहीं... दक्षिणा चार रूप में दी जा सकती है। स्वर्णादि के रूप में, गौ, वस्त्र, अश्व-घोड़े आदि जो भी ऋत्विजों के लिए उपयोगी हो, अथवा जिसको वे पसन्द करें, उनसे पूछा भी जा सकता है, और कुछ नहीं तो अन्न की दक्षिणा देवें... जितनी देनी सोची है उसका आधा भाग ब्रह्मा को, शेष अन्य ऋत्विजों को... वैसे जो कुछ देवे वह सब अतिनम्र और श्रद्धापूर्वक होकर देवे, अभिमान और अश्रद्धा से न देवे, इस प्रकार दक्षिणा का महत्व बताया गया है (श०2-2-2, ऐ०16-35, तां० (016-1-13-14, गो०उ०6-14,06-35, श०1-2-3-4, गो०पू०2-17, ऐ०6-3, श०4-3-4-5, जै०उ०3-1-7-5)। शतपथ (9-3-3-28) में एक सारगर्भित आख्यान के द्वारा कहा गया है कि यज्ञ ने कहा कि मैं नग्नता से डरता हूँ। पूछा कि फिर तेरी अनग्नता क्या है? मुझे चारों ओर से घेरना चाहिए।... इसलिए इसे चारों ओर से अग्नि से घेरा जाता है अर्थात् यज्ञ में अग्नि का प्रज्वलन ठीक प्रकार से होना चाहिए। फिर यज्ञ ने कहा कि मैं तृष्णा से डरता हूँ। फिर किस प्रकार से तुम्हारी तृप्ति होगी? कहा गया कि यज्ञ में विद्वान् की तृप्ति से ही यज्ञ की तृप्ति होती है।

यज्ञ में प्रयोग किए जाने वाला गोघृत संस्कारयुक्त हो, यज्ञ की सामग्री आदि स्वच्छ एवं ऋतु-अनुकूल हो, यज्ञ-पात्र एवं विधि आदि भी उपयुक्त हो तथा योग्य ऋत्विजों का वरण भी कर लिया जाए मगर सबसे महत्वपूर्ण बात है कि यजमान श्रद्धायुक्त होना चाहिए। शत०ब्रा० (11-3-1-2 से 4) में बहुत ही महत्वपूर्ण बात इस प्रकार कही गई है-प्रातः सायं दोनों समय यज्ञ करें, यदि घृतादि उत्तम शाकल्य न हो तो दुग्ध से ही करे, यदि दूध न हो तो फिर किससे करें? चावल और जौ से करें, ये भी न हों तो किसी अन्य वनस्पतियों से करे। यदि वे भी न हों तो आरण्य वनस्पति आदि ओषधियों से करे। यदि वे भी उपलब्ध न हों तो जल से ही करे, वह भी न मिले तो वाणी मात्र से ही मन्त्रों का उच्चारण कर लेवे। उसमें तो कहीं न जाना, न कुछ लाना परन्तु श्रद्धापूर्वक करे क्योंकि ईश्वर सर्वप्रथम सत्यव्यवहार और श्रद्धा को, यजमान के भावों को देखते हैं, यदि उसका जीवन सत्यमय, श्रद्धामय और मानसिक विचार पवित्र नहीं हैं तो उस को बृहत् यज्ञ से और दीर्घकालीन दिखावटी सन्ध्या-साधना से इच्छित कामना पूर्ण नहीं हो सकती... श्रद्धाविहीन यज्ञ निष्फल है और इसके विपरीत यदि कोई श्रद्धावान् होकर यज्ञ करता है तो यज्ञ कभी निष्फल नहीं होता... श्रद्धाहीन और अंहकारयुक्त यज्ञ को ही गीता में तामस-यज्ञ और राजस-यज्ञ कहा है (अ०17)।

संस्कृत भाषा भारतीय संस्कारों की जननी है

आर्य समाज मंदिर आर्य समाज चौक, पटियाला में वार्षिक प्रतियोगिता 'वेद पाठ एवं संस्कृत श्लोकोचारण का आयोजन आर्य ब्रिक्स समाना के सौजन्य से किया गिया जिसमें पटियाला जिला के विभिन्न 13 प्रतिष्ठित स्कूलों मुख्यत: डी.ऐ.वी. पब्लिक स्कूल-पटियाला, समाना, बादशाहपुर, पत्रान चीका, ओर्बिन्दो इंटरनेशनल स्कूल, शकुंतला बीर स्कूल तथा एस डी स्कूल्स-(आर्य समाज तथा सरहंदी बाजार), आर्य गर्ल्स स्कूल, केवी-III, दयानंद मॉडल स्कूल, समाना आदि के तकरीबन 100 बच्चों ने बढ़-चढ़ भाग लिया। सभी बच्चे उत्साह से भरे हुए थे तथा पूर्ण तैयारी के साथ आये थे। उन्होंने अपने बेहतरीन प्रदर्शन से उपस्थित सभी लोगों का मन मोह लिया। बच्चों की प्रस्तुति के पूरा समय हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजता रहा। मंत्रोच्चारण में आर्य गर्ल्स पटियाला-प्रथम स्थान, डी. ऐ. वी समाना-दूसरे तथा डी.ऐ.वी पटियाला तीसरे स्थान पर रही। संस्कृत श्लोकोचारण में डी.ऐ.वी. समाना-प्रथम स्थान एस डी स्कूल दूसरे तथा डी.ऐ.वी चीका तीसरे स्थान पर रही। डी.ऐ.वी. समाना की टीम ओवरआल चैंपियन रही। विजेता टीमों को ट्राफी दी गयी तथा सभी सहभागियों को सर्टिफिकेट प्रदान किये गए।

इससे पहले इस कार्यक्रम का शुभारम्भ वैदिक हवन यज्ञ के साथ किया गया जिसमें सभी आर्यजनों ने यज्ञाग्नि में आहुतियाँ प्रदान कर परमपिता परमेश्वर से आशीर्वाद प्राप्त किया। डॉ. पुष्पिंदर जोशी (संस्कृत विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी) ने इन समारोह की अध्यक्षता की तथा अपना शुभ आशीर्वाद देते हुए कहा कि बच्चों में प्रतिभा की कोई कमी नहीं है। अध्यापक वर्ग को केवल उन्हें थोड़ी दिशा दिखाने की जरूरत है। भारतीय संस्कृति को बचाने के लिए संस्कृत का पठन पाठन बहुत जरूरी है।

आज के कार्यक्रम के मुख्य मेहमान रहे डॉ. मोहन लाल शर्मा, प्रिंसिपल डी.ऐ.वी. पब्लिक स्कूल, समाना तथा सदस्य, बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स, पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड ने कहा कि वर्तमान समय में आर्य समाज, डी.ऐ.वी. स्कूल्स, आर्य स्कूल्स, दयानंद स्कूल्स, एस डी स्कूल्स तथा कुछ ही अन्य प्राइवेट शिक्षण संस्थान संस्कृत एवं संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए कार्यरत है क्योंकि महर्षि दयानंद सरस्वती का भी यही मंतव्य है कि संस्कृत में ही भारतीय संस्कृति बस्ती है, डॉ. ओमानदीप (गर्ल्स कॉलेज, पटियाला), डॉ. मनीष कुमार (खालसा कॉलेज) तथा डॉ. शालू शुक्ला (सरकारी हाई स्कूल, रामगढ़) ने जज के रूप में भूमिका निभाई। प्रधान श्री राजकुमार सिंगला जी ने सबका धन्यवाद करते हुए कहा कि आर्य समाज संस्कृत को बढ़ावा देने के लिए आगे भविष्य में भी और ऐसे कार्यक्रम करता रहेगा। कार्यक्रम का संयोजन बिजेंदर शास्त्री ने किया। इस अवसर पर मदन लाल डकाला विशेष अतिथि के रूप में पधारे थे तथा प्रिंसिपल निखिल मंडल, वीरेंदर सिंगला, कर्नल आनंद मोहन सेठी, वेद प्रकाश तुली, जतिंदर शर्मा, परवीन कुमार आर्य, गुलाब सिंह, बैजनाथ, रमेश गंडोत्रा, हर्ष वर्धन, संगीता सिंगला, नरेश बाला, सरिता आर्य, स्वराज शर्मा, सोनम एवं अनेक गणमान्य व्यक्ति मौजूद रहे।

कार्यक्रम का समापन शांतिपाठ के साथ हुआ। अंत में ऋषि लंगर का आयोजन किया गया।

मानव शरीर और उसका पोषण-भक्ष्य अभक्ष्य

ले.-अविनाश चन्द्र 122, सैक्टर, 12-ए, पंचकूला

(गतांक से आगे)

मुख्य बात यह है कि भोजन ताजा हो, शुद्ध सामग्री से बनाया गया हो, शुद्ध स्थान पर बना हो तथा शुद्ध शरीर वस्त्र वाले पाचक ने शुद्ध पात्रों में बनाया हो और शुद्ध पात्रों में परोसा गया हो। सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने गृहिणी द्वारा भोजन बनाने के बारे में लिखा है-''स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से... सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनाये जो औषध रूप होकर शरीर व आत्मा में रोग को न आने दे।''आपस्तम्भ सूत्र में आया है'' आर्याधिष्ठाता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्यु'' अर्थात् आर्यों के घर में शूद्र स्त्री पुरूष पाकादि सेवा करें परन्तु शरीर वस्त्रादि से पवित्र रहें। मुख और सिर पर वस्त्र बांधें ताकि खाने में बाल न गिरें और श्वास मुख के छींटे न गिरे। आठवें दिन नख छेदन करें। स्नान नित्य करें। (सत्यार्थ प्रकाश दसवां समुल्लास)।

हितभुक् , मित भुक्, ऋत भुक्-यह भोजन व्यवस्था सभी आयु और सभी वर्णों के लिए समान रूप से लागू होती है। जो शरीर के हित में है वही खाया जाए अर्थात् जिससे शरीर को उचित पोषण मिलता रहे और शरीर में कफ, पित्त, वात का सन्तुलन बना रहे। यदि शरीर रोगी है तो यही हित में है कि पथ्य का भोजन किया जाए। मित भुक्-तात्पर्य यह है कि आवश्यकता से अधिक न खाया जाय। बार-बार खाना उचित नहीं। इसी प्रकार ठूंस-ठूंस कर खाना भी उचित नहीं। भूख के बिना नहीं खाना चाहिए। भूख थोड़ी रह जाए तभी भोजन छोड़ देना चाहिए। कहा जाता है कि पेट में दो भाग भोजन, एक भाग जल और एक भाग वायु के लिए रखना चाहिए। ऋत भुक्-ऋतु के अनुसार भोजन व्यवस्था को नियमित करना चाहिए। ऋतुफल, शाक सब्जियां उचित मात्रा में लेना चाहिए।

भक्ष्य अभक्ष्य विचार-क्या खाने योग्य है क्या नहीं

सत्यार्थ प्रकाश के दसवें समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थों के बारे में विचार किया है। मनुस्मृति के पांचवें अध्याय में भी भक्ष्य-अभक्ष्य का वर्णन किया गया है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं-''भक्ष्याभक्ष दो प्रकार का होता है एक धर्म शास्त्रोक्त दूसरा वैद्यकशास्त्रोक्त''

धर्मशास्त्रोक्त भक्ष्य अभक्ष्य-मनुस्मृति का उदाहरण देते हुए महर्षि दयानन्द दसवें समुल्लास में लिखते हैं-

1. अभक्ष्याणि द्विजातीनाम मध्य प्रभवाणि च।

2. वर्जयेन्मधुमांसं च।

3. बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते।

अर्थात् द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों) को मलीन, विष्ठा, मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूलादि खाने योग्य नहीं।

अनेक प्रकार के मद्य (गांजा, भांग, अफीम, शराब आदि) तथा मांस वर्जित हैं।

जो जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें। सड़े बिगड़े दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए पदार्थ हैं खाने योग्य नहीं हैं। मद्यमांसाहारी, म्लेच्छ जिनका शरीर मद्यमास के परमाणुओं से पूरित है उनके हाथ का बना भोजन न खाएं।

जितना हिंसा, चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से प्राप्त पदार्थों का भोग अभक्ष्य है। अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त भोजनादि भक्ष्य है।

चौका लगा कर ही भोजन बनाया जाए तभी वह भक्ष्य होगा ऐसा नहीं है। भोजन बनाने का स्थान और खाने का स्थान जहां तक हो सके साफ सुथरा होना चाहिए। परन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते जाना व जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को मारते जाना अपनी विजय निश्चित करना ही आचार सम्मत और पराजित होना अनाचार है।

भोजन पकाने और एक साथ बैठकर खाने में छुआछूत का विचार ठीक नहीं। महर्षि लिखते हैं ''आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई दोष नहीं दीखता। जब एक मत, एक हानि लाभ एक दुःख सुख परस्पर न माने तब तक उन्नत्ति होना बहुत कठिन है।'' इसी प्रकार जब हम गुड़, चीनी, घी, दूध, पिसा हुआ पदार्थ, शाक, फल मूल आदि बाजार से लेकर काते हैं तो छुआ छूत का विचार निरर्थक हो जाता है क्योंकि इन वस्तुओं को तैयार करने, रखने, लाने, ले जाने, बेचने आदि में सभी धर्मों और सभी वर्गों के लोगों के हाथ लगते हैं।

इसी प्रकार ''सखरी'' और ''निखरी'' तथा ''कच्चा खाना'' ''पक्का खाना'' इनका विचार भी भक्ष्य अभक्ष्य निर्धारण करने के लिए केवल पाखण्ड है। सखरी जो जल आदि में अन्न पकाएं जाते हैं (शाक भाजी, रोटी, दाल, चावल) वे सखरी कहे जाते हैं। जो घी दूध में पकाए जाते हैं (पूरी, परांठे, खीर, हलवा, मिष्ठान्न आदि) वे निखरी कहे जाते हैं। पाखण्डी लोग सखरी को दूसरे के हाथ का छुआ अभक्ष्य तथा निखरी को भक्ष्य मानते हैं। महर्षि दयानन्द इस प्रकार का भेद भी ''धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड'' मानते हैं।

ब्रह्मचारी के लिए व्यवस्था-सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में महर्षि ने मनुस्मृति के उद्धरण से लिखा कि ''ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी'' के लिए मद्य मांस, गन्ध, माला रस सब खटाई, प्राणियों की हिंसा वर्जित है। मनु स्मृति 2/157/158 में आदेश है कि ब्रह्मचारी भिक्षा भी प्रतिदिन मांग कर खाए। भिक्षा भी श्रेष्ठ आचरण वाले व्यक्तियों के घरों से ग्रहण करे। पापी व्यक्ति से किसी भी अवस्था में भिक्षा याचना न करें।

वानप्रस्थी व सन्यासी के लिए आदेश-नशीले पदार्थ, मांस, अत्यन्त गर्म, खट्टे, बासी, जूठे पदार्थ वर्जित हैं। सन्यासी भिक्षा मांग कर खाए। भिक्षा का लालच न करे और स्वाद में मन को न लगाए।

दूसरों के यहां खाने की भावना से पाप-दूसरों के यहां केवल भोजन प्राप्त करने की भावना करना पाप है। मनुस्मृति 3/104 में कहा गया है कि जो गृहस्थ हो के पराए घर में भोजनादि की इच्छा करते हैं तो वे बुद्धिहीन गृहस्थ, अन्य से प्रतिग्रह रूप पाप करके जन्मान्तर में अन्नादि दाताओं के पशु बनते हैं क्योंकि अन्य से अन्नादि का ग्रहण करना अतिथियों का काम है गृहस्थों का नहीं (मनुस्मृति)

मांस भक्षण का निषेध-स्थूल शरीर (अन्नमय कोश) व सूक्ष्म शरीर (प्राणमय कोश, मनोमय कोश, ज्ञानमय कोश, विज्ञानमय कोश) के पोषण के लिए अन्न को ही आधार माना गया है, मांस भक्षण को नहीं। उपनिषदों के निम्नलिखित वाक्य इस बात की पुष्टि करते हैं:-

प्रश्नोपनिषद-''अन्न वै प्रजापति ततोहवै तद्रेतस्मादिमा प्रजा प्रजायन्त इति।'' अर्थात् अन्न ही प्रजापति है। उससे वीर्य की उत्पत्ति होती है और वीर्य से प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

तैतिरीय उपनिषद-''अन्न द्वै प्रजाः प्रजायन्ते। अन्नेनैव जीवन्ति।

अन्नंहिभूतानां ज्येष्ठम। अन्नाद्-भूतानिजायन्ते जातन्यन्ने न वर्धन्ते।''

अन्न से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। अन्न से ही जीते हैं। अन्न ही उत्पन्न पदार्थों में बड़ा है। अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हो कर बढ़ते हैं।

मुण्डकोपनिषद्-''तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमिभजायते। अन्नाद् प्राणों मनः सत्य लोकाः कर्मसु चामुत्तम्।''

ईक्षण से ब्रह्म बढ़ता है। उससे अन्न उत्पन्न होता है। अन्न से प्राण, उससे मन, उससे सत्य (पंचभूत), उनसे विभिन्न लोक मनुष्यादि योनि और कर्म व कर्मफल उत्पन्न होते हैं।

इसके अतिरिक्त वैदिक धर्म में अहिंसा पालन को श्रेष्ठ एवं अनिवार्य धर्म माना गया है। यमों में अहिंसा भी एक है। उनको प्रतिदिन पालनीय धर्म कहा है। इसके विपरीत हिंसा सुरापान आदि को अधर्म व महापातक माना गया है। वेदों में गाय, अश्व, मनुष्य, (द्विपाद्, चतुष्पाद) सभी प्राणियों के वध का निषेध है। ''पशून पाहि'' यजु 1/1 (पशुओं की रक्षा करों) ''शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।'' (यजु 36/8 (द्विपद और चतुष्पद प्राणियों का कल्याण हो), ''गा मां हिंसी'' यजु 13/43 (गाय को मत मारो), ''मा गामनागाम् अदितिम् वधिष्ट'' ऋ. 8/101/15 (निर्दोष गाय का वध मत करो), ''इमं मा हिंसी वाजिनम्''

(शेष पृष्ठ 7 पर)

पृष्ठ 6 का शेष-मानव शरीर और उसका...

यजु. 13/48 (अश्व का वध नहीं करना चाहिए) वेदों में इसी प्रकार के अनेक प्रमाण आते हैं जिसमें पशु हिंसा का निषेध है। महर्षि दयानन्द "गोकरुणानिधि" में लिखते हैं सुख दुख की चाह सब को है। कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं जिसको उसका गला काटने पर दुख न हो और रक्षा, लालन पालन से सुख न हो। जब सबके लाभ और सुख में ही प्रसन्नता है तो बिना अपराध किसी प्राणी का प्राण वियोग कर के अपना पोषण करना यह सत्पुरुषों के सामने निन्द्य कर्म क्यों न होगा। शुभ गुण युक्त, सुख कारक पशुओं के गले काट कर जो मनुष्य अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारक दुख देने वाले और पापी मनुष्य होंगे?" महर्षि दयानन्द ने कहा कि यह केवल भ्रांति है कि मांसाहारी अधिक बलवान होते हैं। मांसाहारी सिंह की तुलना में शाकाहारी वराह, अरणा भैंसा अधिक बलवान होते हैं। महर्षि दयानन्द ने कहा जिस व्यवहार से दूसरों को हानि हो वह अधर्म और जिस व्यवहार से उपकार हो वह धर्म कहाता है। लाखों सुख लाभ कारक पशुओं का नाश करना अधर्म और उनकी रक्षा से लाखों को सुख पहुंचाना निश्चय ही धर्म है।

मनुस्मृति 5/45-49 में भी इसी प्रकार मांस भक्षण को वर्जित बताया गया है। मनु का कथन है कि जो अपने सुख के लिए कभी न मारने योग्य प्राणियों की हत्या करता है, वह जीते हुए भी और मर कर भी कहीं भी सुख प्राप्त नहीं करता। प्राणियों की हिंसा किए बिना मांस प्राप्त नहीं हो सकता इसलिए मांस खाना वर्जित है। मनुस्मृति 4/173 में मांस भक्षण में भागी आठ प्रकार के पापी बताए हैं-पशु हिंसा की आज्ञा देने वाला, पशुहिंसक, मांस काटने वाला, पशुहिंसा के लिए खरीदने व बेचने वाला व मांस बेचने व खरीदने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला, यह सभी पापी हैं और पाप का फल शीघ्र या देर से मिलता अवश्य है (मनु. 4/173)

वैदिक साहित्य में पायी जाने वाली पशु बलि, मांस वर्णन, सुरा वर्णन, तन्त्र मन्त्र आदि विकृतियां हैं जो कि प्रक्षिप्त हैं। यह वाममार्गियों की करतूते हैं। विलासी राजाओं को प्रसन्न करने के लिए राज पुरोहितों ने भी यह वाम मार्गी पद्धतियां अपनाई। भारतीय चिन्तन जो ईशा वास्योपनिषद में वर्णित है वह यह है-

"यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति, सर्वभूतेषु चात्मानं ततोन विजुगुप्सते।"

आर्थिक-दृष्टि से भी देखा जाए तो पशुओं को मार कर उनका मांस खाने से उनका प्रयोग करना, उनका दूध पीना/तथा मल मूत्र से खाद बनाकर भूमि उर्वरक बनाना अधिक लाभकारी है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के दसवें समुल्लास तथा "गोकरुणानिधि" में भलीं भांति गणना कर के जीवित पशुओं से होने वाले लाभ को सिद्ध किया है। उन्होंने हिसाब लगाया कि प्रति गाय से एक दिन में 10 लीटर दूध प्राप्त होता है। गाय औसतन 12 महीने दूध देती है। प्रत्येक गाय के दूध उत्पादन से उसके जीवन में लगभग 25000 मनुष्य एक बार में तृप्त हो सकते हैं। उसके जीवन में लगभग 10 बछड़े और बछियां हुई। पांच बछड़ियों वो दूध से 125000 मनुष्यों की सकते हैं जिससे लगभग 2.5 लाख मनुष्य भोजन प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार एक गाय की एक पीढ़ी से लगभग 4 लाख मनुष्य एक बार पालित होते हैं और इनके मांस से अनुमानतः केवल 80 मांसाहारी मनुष्य ही एक बार तृप्त हो सकते हैं। इस में जीवित गायों बैलों के मलमूत्र से खाद से जो लाभ होता है तथा मृत्यु के पश्चात खाल से जो लाभ होता है वह शामिल नहीं है। इसी प्रकार अन्य जीवित पशुओं (भैंस, बकरी, भेड़ आदि) से अधिक लाभ होता है।

वैद्यकशास्त्रोक्त भक्ष्य अभक्ष्य

जिन पदार्थों से स्वास्थ्य लाभ, रोगनाश, बुद्धि पराक्रम वृद्धि और आयु वृद्धि होवे उन (चावल, गेहूँ, फल, मूल, कन्द, दूध, घी मिष्ठादि) पदार्थों का सेवन यथायोग्य मेल कर के यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं जिस जिस के लिए जो जो पदार्थ वैद्यक शास्त्र में वर्णित किए हैं, उन उन का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिए विहित हैं उन उन पदार्थों का ग्रहण करना भी भक्ष्य है। (स. प्र. दसवां समुल्लास) वात, पित्त, कफ का सन्तुलन बनाए रखने वाले पदार्थ, ऋतु के अनुकूल, धातुओं की पुष्टिकारक पदार्थ भक्ष्य अन्यथा अभक्ष्य हैं। रोगी का पथ्य का आहार ही भक्ष्य है अन्य अभक्ष्य है। रोग होने पर घाव या व्रण होने पर, विष का प्रभाव होने पर, जहरीले कीड़े या जन्तु के काटने पर उपचार के लिए जो जो पथ्य हैं वह भक्ष्य हैं अन्यथा अभक्ष्य हैं।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार न किसी को अपना जूठा पदार्थ दें और न किसी का जूठा खाएं। न अधिक भोजन करें और न ही अनावश्यक रूप से उपवास करें। गुरु का भी जूठा नहीं खाना चाहिए। गुरु को पहले भोजन कराने के पश्चात् जो शुद्ध अन्न पृथक रखा हो वह शिष्य खाए।

बासी भोजन नहीं किया जाना चाहिए परन्तु दही छाछ, मक्खन, दूध के विकार से बने पदार्थ (खोया, पनीर, मिठाई) घी या तेल में विधिपूर्वक पकाई गई खाद्य सामग्री, दूषित न हो तो, बासी भी खाई जा सकती है।

मानव शरीर-स्थूल और सूक्ष्म-ईश्वर प्रदत्त है इसका पोषण उसका उत्तरदायित्व है और इसका पूर्ण विकास इसको कर्मशील रखना इसका कर्तव्य है। जीवनचर्या के विभिन्न आयामों में खान पान का विशेष महत्व है। धर्मशास्त्रोक्त और वैद्यकशास्त्रोक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर भक्ष्य अभक्ष्य का सतर्कता से निर्धारण और उसी के अनुसार आचरण मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक और आत्मिक उन्नति के लिए परम आवश्यक है। इस प्रकार उन्नति को प्राप्त करके ही मनुष्य कर्मशील होकर सौ वर्ष तक जीने की कामना कर सकता है। और इसी प्रकार "मनुर्भव" के आदेश का पालन करते हुए "जनया दैव्यं जनम्"-अगली पीढ़ी को उत्पन्न कर के उसे दिव्य गुणों से सुसंस्कृत कर सकता है।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमाविथ।।

-पू० २.१.२.२

भावार्थ-हे पूजनीय प्रभो! जो पुरुष आपकी भक्ति में लग गये और आपके ही मित्र हो गये हैं, उन भक्तों को आप अपनी अति बल वाली, पुरुषार्थ और पराक्रमवाली रक्षाओं से सर्वदुःखों से पार करते हैं, अर्थात् उनके सब दुःख नष्ट करते हैं। आपकी अपार कृपा से उन प्रेमियों को आत्मिक बल मिलता है, जिससे कठिन-से-कठिन विपत्ति आने पर भी, सदाचाररूप धर्म और आपकी भक्ति से कभी चलायमान नहीं होते।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।
भद्रा उत प्रशस्तयः।।

-पू० २.१.२.५

भावार्थ-हम सबको योग्य है, कि होम यज्ञ, दान, ध्यान, स्तुति, प्रार्थना आदि जो-जो अच्छे कर्म करें, श्रद्धा भक्ति और प्रेम नम्रता से करें, क्योंकि श्रद्धा और नम्रता के बिना, किये कर्म, हस्ती के स्नान के तुल्य नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अश्रद्धा, अभिमान, नास्तिकता आदि दुर्गुणों को समीप न फटकने दो। वे पुरुष धन्य हैं, जो यज्ञ दान, तप, परोपकार, होम, स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि उत्तम कामों को श्रद्धा नम्रता और प्रेम से करते हैं। हे प्रभो! हमें भी श्रद्धा नम्रता आदि गुणयुक्त और दान यज्ञादि उत्तम काम करने वाला बनाओ।

आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत।
सखायः स्तोमवाहसः।।

-पू० २.२.७.१०

भावार्थ-हे मित्रो! आप एक दूसरे के सहायक बनो और आपस में विरोध न करते हुए मिलकर बैठो। उस जगत्पिता की अनेक प्रकार की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करो। उस प्रभु के अत्यन्त कल्याणकारक गुणों का गान करो, ऐसे उसके गुणों का गान करते हुए, सब सुखों को अर मोक्ष को प्रात्व होगे, उसकी भक्ति के बिना मोक्ष आदि सुख प्राप्त नहीं हो सकते।

आर्य समाज नंगल में वेद प्रचार सप्ताह बड़े हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न

आर्य समाज नंगल का वेद प्रचार सप्ताह श्रावणी उपाकर्म हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आर्य समाज के सदस्य हवन यज्ञ करते हुये जबकि चित्र दो श्री सतीश अरोड़ा जी प्रधान आर्य समाज, श्री आसकरण दास जी सरदाना एवं श्री ओमप्रकाश खन्ना जी के साथ वैदिक प्रवक्ता श्री सुरेश शास्त्री जी।

आर्य समाज नंगल के तत्वावधान में वेद प्रचार सप्ताह श्रावणी उपाकर्म 18 अगस्त से 25 अगस्त 2019 तक बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया जिसमें आर्य समाज के आयोजकों ने सामवेद पारायण यज्ञ की व्यवस्था की थी। पहले दिन सभी आर्यों को यज्ञोपवीत ग्रहण करवाए गये। आर्य समाज में प्रतिदिन प्रात: 8.00 बजे से 10.00 बजे तक एवं सायं 6.00 बजे से 8.30 बजे तक सामवेद के मंत्रों द्वारा हवन यज्ञ किया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर से पधारे श्री सुरेश शास्त्री जी ने अपने प्रवचनों में श्रावणी पर्व एवं वेदों की ख्याति, वेद इस संसार की सबसे प्राचीन रचना है, वेद ईश्वरीय वाणी है। जब से सृष्टि की रचना हुई है तभी से ईश्वर द्वारा वेदों की रचना की गई। इनका ज्ञान हमें हमारे ऋषि मुनियों ने दिया। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेदों का भाष्य करके इन्हें हमारे लिये सरल किया और वेदों के सार को सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ के रूप में हमें ईश्वरीय वाणी से अवगत कराया है। आचार्य सुरेश शास्त्री जी ने कहा कि मानव जीवन के लिये सबसे महत्वपूर्ण है, परमात्मा के सच्चे स्वरूप को समझना, उसके गुण कर्म स्वभाव का सही ज्ञान प्राप्त करना। अगर हम ऐसा नहीं कर पाते तो निश्चित मानिये कि हमारे जीवन की दशा-दिशा डांवाडोल ही रहेगी। परमात्मा के बारे में अधिक नहीं तो इतना तो अवश्य जान लें कि वह इस ब्रह्माण्ड को रचने वाला तथा चलाने वाला है। परमात्मा एक है अनेक नहीं। वह सर्वव्यापक है किसी एक स्थान विशेष मंदिर-मस्जिद आदि में नहीं रहता है, सर्व सर्वज्ञ है। सब कुछ जानता है। सर्वान्तर्यामी है। सबकी हृदयों की बातों को जानता है। सर्वशक्तिमान है। सृष्टि को बनाने, चलाने व हमारे कर्मों का फल देने आदि कामों में किसी की सहायता नहीं लेता। अपने ही सामर्थ्य से अपनी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, आदि गुणों से वह अकेला ही सब कार्यों को सहज भाव से करता रहता है। परमात्मा के नियम, सिद्धान्त व व्यवस्थाएं अटल है। वह निष्पक्ष न्यायकारी है। उसके सामने सभी प्राणी सब समान हैं किसी के प्रति कोई भेदभाव नहीं करता। आचार्य जी ने कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर कहा कि हम योगीराज श्री कृष्ण को जाने फिर उसको माने और आचरण में लावें परन्तु भारत में केवल वैदिक, आर्य लोगों को छोड़ कर सभी श्री कृष्ण का चरित्रहनन कर रहे हैं। उसको अवतार मान कर ईश्वर मानते हैं। एक ओर तो उसको अवतार मानते हैं दूसरी ओर उसकी बुराईयां करते, बुरे बुरे आरोप लगाते हैं और कहा कि श्री कृष्ण पर इतने आरोप लगाए हैं कि सुनने योग्य नहीं हैं और उन्होंने कहा कि योगीराज दान, दक्षता, वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता, शूरवीरता, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, नम्रता, ब्राह्मणों के पैर धोने वाले, धर्मी, तपस्वी थे परन्तु पौराणिक कथाओं में श्रीकृष्ण जी को प्रेमी, रासक्रीडा तथा राधा के सखा बता, चोर, आदि कह कर उनके चरित्र पर गहरी चोट की है। अन्त में आर्य समाज के प्रधान श्री सतीश अरोड़ा जी ने भी ऐसे महान आप्त पुरुष का जन्म दिवस हमें कैसे मनाना चाहिये, स्वयं निर्णय करें। श्री कृष्ण की भान्ति श्रेष्ठ बने इसलिये हमें महान पुरुषों का अपमान न करके उनको पूर्णरूपेण समझ कर उनके जीवन के गुणों के अनुसार अपना कर जीवन बदलें। अंत में श्री आसकरण दास सरदाना, श्री ओ.पी. खन्ना एवं अध्यक्ष सतीश अरोड़ा जी ने श्री सुरेश शास्त्री जी को स्मृति चिन्ह एवं दोशाला देकर सम्मानित किया। इस कार्यक्रम में आर्य समाज की कार्यकारिणी के सदस्य एवं स्त्री आर्य समाज के सभी सदस्य, श्री जी.सी. तलूजा, सतपाल जौली, राजीव खन्ना, प्रेम सागर, राज खन्ना, नितिन खन्ना, हरिन्द्र भारद्वाज, प्रधान श्रीमती मीनाक्षी खन्ना, आशा अरोड़ा, नरेश सहगल, हनी सेठ, सनिग्धा खन्ना, दीवान चंद शर्मा, अशोक भाटिया, किरण सेठ, डा. ईश्वर चंद सरदाना, डा. अर्चना सरदाना, अमृता खन्ना, आरती खन्ना, पूनम खन्ना उपस्थित थे। बाद दोपहर ऋषि लंगर का वितरण किया गया।

सतीश अरोडा प्रधान आर्य समाज नंगल

स्वामी गंगागिरी जनता गर्ल्ज कालेज रायकोट में हवन यज्ञ का आयोजन

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) की एजुकेशन विंग आर्य विद्या परिषद पंजाब, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर द्वारा संचालित लुधियाना जिले की सुदृढ ग्रामीण शैक्षणिक संस्था स्वामी गंगागिरी जनता गर्ल्ज कालेज रायकोट के प्रांगण में नये सत्र 2019-20 के शुभारम्भ पर कार्यकारी प्रिंसीपल मैडम श्रीमती शिल्पा गोयल जी के सुयोग्य निर्देशन में दिनांक 27 अगस्त 2019 को पावन हवन यज्ञ समारोह का आयोजन किया गया। लुधियाना से पधारे पूज्य शास्त्री जी के पावन मंत्रों के उच्चारण द्वारा यज्ञ कुंड में ज्योति प्रज्वलित की एवं यज्ञ की आहुतियां प्रदान कर छात्राओं के उज्ज्वल भविष्य की कामना की गई। इस अवसर पर कालेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान श्री रमेश कौड़ा जी, जनरल सैक्रेटरी श्री राजिन्द्र कौड़ा जी, सदस्य श्री के.के.धीर जी, श्री एस.एम.शर्मा जी, श्री रविन्द्र जोशी जी, श्री परविन्द्र गोयल जी, मैडम सविता शर्मा जी, मैडम राजेश शर्मा जी एवं कार्यकारी प्रिंसीपल मैडम

स्वामी गंगागिरी जनता गर्ल्ज कालेज रायकोट में नये सत्र पर हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रबन्ध समिति के प्रधान श्री रमेश कौड़ा जी एवं जनरल सैक्रेटरी श्री राजिन्द्र कौड़ा जी हवन यज्ञ में आहुतियां प्रदान करते हुये। इस मौके पर प्रबन्ध समिति के अन्य सदस्य भी उपस्थित थे।

श्रीमती शिल्पा गोयल जी ने मुख्य मेहमान श्री विजय गर्ग जी ज्वायंट मैनेजिंग डायरैक्टर आई.ओ.एल. कैमिकल्स तथा फार्मा-सियुटीकल लि.लुधियाना एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुनीता गर्ग जी को पुष्प गुच्छ एवं सम्मान चिन्ह भेंट कर उनका हार्दिक अभिनन्दन किया गया। हवन यज्ञ के पश्चात कालेज की छात्राओं ने अपनी मधुर आवाज में भजन प्रस्तुत किये। तत्पश्चात मैडम प्रिंसीपल जी ने कालेज की उपलब्धियों के बारे में बताया। इस अवसर पर मुख्य मेहमान कालेज मैनेजिंग कमेटी के पदाधिकारी, प्रिंसीपल एवं उपस्थित गणमान्य सज्जनों ने कालेज पत्रिका कन्या संदेश का विमोचन किया तथा कालेज कलर, मैरिट सर्टिफिकेट तथा रोल आफ ऑनर प्राप्त करने वाली छात्राओं एवं शैक्षणिक क्षेत्र में मैरिट में आने वाली छात्राओं को नकद पारितोषिक तथा ट्राफी देकर (शेष पृष्ठ 5 पर)

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org